chapter 3

अध्याय - 3

पूर्ववर्ती काव्य में नारी जीवन का चित्रण

- वैदिक काल
- आदि काल
- मध्य काल
- आधुनिक काल

(नवजागरण की चेतना, अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य का प्रभाव, मध्यकालीन नारी भावना के प्रति विद्रोह, समाज–सुधार की लहर का प्रभाव, नारी उत्थान की भावना, इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमाव।)

प्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान मेयरजी ने अपनी पुस्तक सेक्सुअल लाइफ़ इन ऐनसियंट इन्डिया में लिखा है कि किसान और नागरिक के बिना काव्य का काम चल सकता है , किन्तु उसमें से नारी को हटाते ही उसका जीवन नष्ट हो जाता है । [1]

नारी को सभी युगों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है । अतः स्वाभाविक रुप से कवियों द्वारा रचित काव्य में नारी की प्रधानता है । उसके प्रति अनुरागात्मक अथवा विरागात्मक द्रष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते हैं । चूंकि कवि की रचना अपने समयानुसार होती है इसलिए उसकी नारी संबंधी भावना भी तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर होती है । विशेष रुप से धर्म का नारी-भावना से घनिष्ठ संबंध है । क्योंकि उसी के आधार पर मनुष्य का संसार, जीवन और प्रेम संबंधी द्रष्टिकोण निर्मित होता है। जिस काल में समाज आध्यात्मिकता की ओर अधिक अग्रसर होता है वहाँ समाज नारी को घृणा की द्रष्टि से देखने लगता है । क्योंकि वे नारी को आध्यात्मिक मार्ग की बाधा मानते हैं । भारतीय संस्कृति में समयानुसार नारीयों की परिवर्तनशील अवस्था देखने को मिलती है । वैदिककाल, आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल में नारी का स्वरुप बदलता रहा है । समाज के लोगों की द्रष्टि भी बदलती रही है । वैदिककाल में नारी की अवस्था उन्नत की ओर अग्रसर थी, जो आगे चलकर नारी केवल घर की चार दिवारों तक सीमित रह गई । किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक आते - आते नारी फिर से अपना सन्मान पा शकी । आज भारत देश 21 वीं शताब्दी की और अग्रसर हो रहा है जहाँ चार दिवारों में सीमित न रहकर वह बहोत आगे निकल गई है । वह हर क्षेत्र में आगे है । अर्थात डाक्टर, इन्जिनियर, प्रोफेसर, पायलाट, वकील जीवन के साथ - साथ राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि अन्य जगहों पर भी कार्यान्वित है । पुरुष वर्ग तो नारी उत्थान के कार्य के लिए आगे आया ही है, पर आज नारी भी नारी के उत्थान के लिए आगे आई है । वह अपने कर्तव्यों के प्रति सजाग हो गई है , आज की नारी समाज में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । भारतीय संस्कृति के भावनामय आदर्श के साथ नारी की चिरमौन, करुणा, त्याग एवं समर्पण की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

आज उन्नत नारी का जो स्वरुप हम देख रहे है । इस दशा तक वह कैसे आई ? वैदिककाल से अब तक भारतीय नारी के विभिन्नरुप एवम् कर्मक्षेत्र एवम् महत्व शास्त्रों, आख्यानों एवं ग्रंथो में उल्लिखित है, प्रायः सभी ग्रंथ नारी को सृष्टि की अनुपम महत्वपूर्ण इकाई के साथ शक्तिरुपा के विराट अस्तित्व को स्वीकार करते है । और जीवन को गति प्रदान करनेवाली सृष्टि के विस्तार हेतु नारी की अनिवार्यता सर्वग्रह्य है । उसके लिए हमें वैदिककाल से लेकर आधुनिककाल तक नारीयों की जो परिस्थिति रही है उस पर द्रष्टि डालना आवश्यक हैं ।

वैदिक काल :-

वैदिककाल का समय अल्टेकर ने 2500 ई.पू. से 1500 ई.पू. तक माना है । "आदिम समाज का जन्म और उसका निर्माण मातृ सत्ता द्वारा ही हुआ था ।" मातृ-सत्ताक-समाज में नारी बलवती थी, गृह की स्वामिनी और संमति की प्रभु।" (2) नारी के विकास एवं अविकास की द्रष्टि से यह भारतीय नारी का स्वर्णकाल है । इस काल में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करनेवाले आर्य दार्शनिक एवं चिन्तनशील थे । उन्होंने चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम को विशेष महत्व दिया । गृहस्थ-जीवन का केन्द्र स्त्री है, जिसकी सृजन और पालन-शक्तियों के कारण उसे प्रचुर आदर प्रदान किया । "वास्तव में नारी का सौन्दर्य और व्यक्तित्व वेदकालीन मस्तिष्क को अनिवार्यतः आकर्षित करता है । उसके चरित्र के गुणगान के पश्चात उसके रुपानुराग की ओर बढ़ते हुए हम देखते है कि वैदिक वेदी का ढाँचा भी स्त्री के रुप पर ही ढाला गया था। "(3)

वैदिक साहित्य में विदूषी नारियों को मन्त्र-साक्षात्कार करनेवाली ऋषिकाओं का स्थान प्राप्त था । नारी का विचार किसी न किसी प्रकार की प्रेरणा अवश्य देता है । "नारी का सौन्दर्य ऋषियों की भावुकता को पूर्णतया अधिकृत करता हुआ उनके नेत्रों के सम्मुख चमकते हुए सोम में भी पूर्ण नारी का स्वरुप उपस्थित करता है । "(4) ऋग्वेद में प्राचीनकाल से विकसित नारी की सभ्यता एवं संस्कृति का दर्शन होता है । धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी, विजयिनी दुर्गा एवं ज्ञान प्रदान करने वाली सरस्वती की तरह अदिति, उषा, इन्द्राणी, भारती, श्रद्धा, पृष्णि आदि दैवी नारियाँ अनेक गूढ़ तत्वों की अधिष्ठात्री देवीयां थीं । वैदिक ऋषियों की इस प्रकार की नारी भावना का कारण यह था कि समाज में भी नारी की अवस्था बहुत उन्नत थीं । वैदिक नारी अपने संतानों के प्रति समान वात्सल्य रखती थी चाहे वह पुत्र हो या पुत्री । दौहित्रों को अपने नाना के लिए पिण्ड दान करने का अधिकार था । उन्हें शिक्षा का पूर्ण अवकाश था ; विवाह 16-17 वर्ष की आयु से पूर्व नहीं होता था; वर के व्यक्तिगत चुनाव का अधिकार था ; पुत्री की हेसियत से पिता की संपत्ति में उसका अधिकार था । सामाजिक और धार्मिक सभाओं में भाग लेने में कोई बाधा नहीं थी । धर्मानिष्ठान एवं यज्ञ-संपादन में नारी का महत्वपूर्ण स्थान था । वैदिक भारत में ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वैदिक ऋचाओं की रचना करती थी । पतियों के साथ स्त्रियाँ भी युद्ध में जाती थी। सुलभा, मैत्रेयी और गार्गी आदि की कथाएँ सर्वविदित है। जिन से शास्त्रार्थ में बड़े - बड़े दिग्गज परास्त्त हो जाते हैं । युद्ध कला हो अथवा रणनीति । शिक्षा व्यवहार जिस किसी भी कला क्षेत्र में हो नारी का वर्चस्व ही मिलेगा ।

मनुस्मृति में कहा गया है कि प्राचीन काल में कन्याओं का मौज संस्कार, वेदारंभ तथा गायत्री-उपदेश होता था । वैदिक आदर्श की द्रष्टि में इस तरह उन्नत प्रतिष्ठा प्राप्त नारी उपनिषदों में

प्रकृति, परा और अपरा शक्ति के रुप में सम्मानित पद पर आसीन रही । घर-बाहर सभी ओर उसका सम्मान था । शिक्षा, साहित्य, समाज, धर्म, गृह-धर्म, आमोद-प्रमोद एवं समर सभी क्षेत्रों में उसकी गति रहती थी ।

शैव सिद्धांत में अर्धनारीश्वर की भावना नारी के इस अनिवार्य महत्व की पुष्टि करती है । मनु-स्मृति के द्वारा आदेश दिया गया है कि - **'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता'** । जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ संपूर्ण देवता आनंद से निवास करते है ओर इसके विरुद्ध चलने पर सभी कर्म निष्फल हो जाते है । मनु ने यहाँ तक कहा कि नारी और ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए धर्मयुद्ध में किसी को मारना भी पड़े तो उसे कर्तव्य-विमूख नहीं होना चाहिए। हिन्दूधर्म में सती और पतिव्रता के रुप में नारी का महान स्थान है । दूसरी तरफ मनुस्मृति में उल्लेखनीय है -

'' प्रजनार्थ महाभाग पूजाहां गृह दीप्तय ः।
स्त्रियः भ्रियभ्य गेहेषु न विशेषी प्रस्ति कश्चन।''

अर्थात :-| वे सृष्टि क्रम में सन्तान उत्पन्न कर घर को दीप्तमान करती है इसलिए भाग्यवती सत्कार के योग्य और गृह की शोभा है । अतः जैसे लक्ष्मी के बिना घर की शोभा नहीं, ऐसे ही स्त्री के बिना घर की शोभा नहीं ।

भारत-वर्ष में आर्य धीरे-धीरे फैल रहे थे । वे गंगा के उपजाऊ मेदानों में पहुँचकर शान्ति-पूर्वक रहने लगे । जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी वैसे सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ-साथ जटिलताएँ भी बढ़ती गई । जैसे -जैसे जाति के बंधन बड़े होते गये वैसे-वैसे स्त्रियों का पद गिरता गया । वर्ण-व्यवस्था के कारण और अनार्यो के उपस्थिति के कारण पुरुषों के स्वतंत्रतापूर्वक मिलना कम होने लगा । स्त्रीयाँ पुरुषों की गौष्ठीयों से कुछ अलग रहने लगी । अनार्यो के संपर्क में आने से उनमें अंर्त-जातीय विवाह भी आरंभ हुए । धार्मिक प्रक्रियाएँ जटिल होती गई। दूसरी ओर शान्तिमय-जीवन में विलासिता की वृद्धि विवाह आयु को नीचे घसीट रही थी । स्त्रियों के शिक्षा के अवकाश एवं विवाह में व्यक्तिगत चुनाव के अवसर भी नष्ट हो रहे थे । लड़की का विवाह शीघ्र करने की चिन्ता में वे योग्य वर नहीं ढूँढ पाते थे । इस तरह स्त्रियों को अयोग्य सहगामी के साथ ही जीवन व्यतीत करना पड़ता था । परिणाम स्वरुप पतिव्रत को विशेष महत्व दिया जाने लगा ।

लोगों का ध्यान धार्मिक अनुष्ठानों की ओर अधिक झुकने लगा । मनुष्य संसार में तीन ऋणों को लेकर आता है, जिनमें पितृऋण सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है । इसका उद्धार तभी हो सकता है जब वह पुत्र को जन्म दें । अब पुत्र-जन्म की प्राप्ति के लिए यौवन-प्राप्त कन्या से विवाह करना भर पर्याप्त रह गया और नारी केवल पुत्र उत्पन्न करने का साधन भर रह गई । वह हरम की वस्तु हो गई

और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों में अपनी स्वतंत्रता खो बैठी । फलतः नारी के व्यक्तिगत मूल्य को गहरा धक्का पहुँचा । लोग मुक्ति की ओर अधिक आकृष्ट होने लगे थे । और साथ में बौद्ध और जैन धर्मों के प्रचार से सन्यास का प्रचार भी प्रबल होने लगा था । मनुष्य भी सन्यास और मोक्ष में आकर्षण पाने लगे और संसार एवं संसार-त्याग ही एक आदर्श हो गया । वैदिक युग में स्त्री जो गृहस्थ-जीवन का केन्द्र थी वही स्त्री परिवार की सहस्त्रों समस्याओं के लिए बाधा-स्वरुप होने लगी । अनादर की द्रष्टि देखी जाने लगी, साथ में उसके चरित्र के संबंध में भी घृणात्मक सिद्धांत बनाये गये । सन्यास और पतिव्रत धर्म पर विशेष बल देने के कारण विधवा-ववाह के अवकाश भी नष्ट हो गए थे । और सती-प्रथा का प्रारंभ हो गया था ।

बौद्ध युग में नारी की स्थिति भिन्न थी । वैदिक नारी के समान बौद्ध नारी को उदात्त स्थान-प्राप्त नहीं था । उसकी आध्यात्मिकता एवं स्वतंत्र मनोवृत्ति क्षीण हो गयी थी । धार्मिक संस्कारों से भी वंचित कर दिया था । जहाँ वैदिक नारी ऋचाओं की सृष्टि करती थी, वही नारी उस उन्नत स्थिति से भ्रष्ट हो कर अत्यंत हीन बन गयी । बौद्धकालीन समाज में इस तरह नारी को अपने मौलिक अधिकारों से वंचित होकर दूर्दशा में पहुँच गई थी । स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा न होने से स्त्री जाति में जन्म लेना ही हीनत्व का द्योतक था ।

मुसलमानों के शासनकाल मे स्त्रियों को महत्व नहीं मिला । स्त्रियाँ शूद्रों से समानता पाने लगीं । मुसलमानों के भय के कारण अवांछनीय मानी जाने लगी और शिशु-हत्या की प्रथा का प्रारंभ हो J ` m& 900 ई. के लगभग मुस्लिमों ने भारत की राजनैतिक और सामाजिक - व्यवस्था में एक विश्रृंखलता उत्पन्न कर दी । हिन्दू-धर्म और विदेशी धर्म में अभूत पूर्व संघर्ष हुआ । पुरोहितों ने धर्म की रक्षाहेतु नियम बनाए जिसमें स्त्रियों की विवाह की आयु 8 वर्ष सर्वोत्तम मानी जाने लगी । विधवा-विवाह बिल्कूल बंद हो गए, सती प्रथा अत्यंत प्रचलित हो गए और पर्दे का भी प्रचार होने लगा । पर्दे में रहने के कारण वह बाहरी दुनिया से कटती गई । और अशिक्षित रहने की वज़ह से एवम् ज्ञान न मिलने से वह अंधविश्वासों आदि का घर हो गई । पुरुषवर्ग में भी शिक्षा और ज्ञान की मात्रा कम होने के कारण स्त्रीयों के प्रति ओर भी असहिष्णुता थी । मुद्रणकला न होने की वजह से वे पौराणिक कथाओं को सुनकर ही ज्ञान प्राप्त करते थे ।

आदिकाल :-

ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी-काव्य का जन्म हुआ । हिन्दी का प्रारंभिक काव्य वीरगाथाओं और धार्मिक उपदेशों के रुप में मिलता है । चारणों - द्वारा रचित वीर-गाथाओं में देखते हैं कि देश और जाति की रक्षा के समय में भी नारी में किसी प्रकार की जागृति नहीं दिखाई पड़ती । वह वीरता के रुप में कहीं नहीं आती । भोग्या के रुप में आकर वह पुरुष की पाँव की बेड़ी सिद्ध होती है । इस काल का

धार्मिक काव्य सिद्धों और जैन आचार्यों द्वारा रचित है । विरक्ति प्रधान काव्य होने से नारी के परित्याग का उपदेश और उसकी निन्दा स्वाभाविक है । वाममार्गी सिद्धों ने भी पंचमकारों को महत्व दिया था । सन्यासी भी नारी का कोई अन्य मूल्य न समझकर उससे दूर भागते थे ।

इस तरह आदिकाल में निन्दात्मक अथवा उपभोगात्मक नारी-भावना की प्रधानता है फिर भी, ऐसी नारी का सर्वथा अभाव नहीं है जो युद्ध-क्षेत्र में पति की वीरगति से गर्व अनुभव करती थी । इस युग में आनन्द और विनोद प्रदान करने वाला अमीर-खुसरो का भी साहित्य मिलता है जिसने प्रत्येक वस्तु को हलका रुप दे दिया । प्रेम और स्त्री भी सस्ते रुप में उपस्थित हुए ।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास विकास की गाथा है । इसका आरंभ होते समय भारतीय संस्कृति चरमोत्कर्ष पर थी और समाप्ति के समय मुस्लिम संस्कृति भारत में चरम पर पहुँच रही थी । इस काल का साहित्य राजा, धर्म और लोक के तीन आश्रयों में बट चुका था । तद्नुकूल भाषाएँ भी बट चुकी थी । संस्कृत प्रधानतः राजप्रवृत्ति को सूचित करती थीं । अपभ्रंश व प्राकृत धर्म की भाषा बन गई थी तथा हिन्दी देशभाषा के रुप में जनता की भावना से जुड़ी थी । इसलिए हिन्दी ही इस काल की भाषा थीं जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया और बिंब मुखरित हो रहे थे । संस्कृत के कवियों और लेखकों को तत्कालीन परिस्थितियाँ अधिक प्रभावित नहीं करती थीं । वे काव्य और शास्त्र के विनोद में ही अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग कर रहे थे । प्राकृत और अपभ्रंश के कवि लेखक धर्मप्रचार में लगे हुए थे ।

सर्वाधिक कठिनाई लोकभाषा के कवियों की थी जिन्हें उचित प्रोत्साहन के अभाव में काव्य रचना का वातावरण नहीं मिलता था । इसलिए जो कवि धार्मिक भावना से अनुप्राणित थे, वे ही किसी की परवाह किए बिना काव्य साधना करते थे किन्तु जो कवि राजाश्रित हो जाते थे उन्हें अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचना करनी पड़ती थी । इसलिए रास, रासक और रास ग्रंथो की प्रचुरता इस काल में हुई । धर्म और राजाश्रय से मुक्त रहकर काव्य रचना करने वाले कवियों की प्रतिभा के विकास के लिए समुचित वातावरण नहीं था । इसलिए इस काल की अधिकांश रचनाओं में नवोन्मेष का अभाव दिखाई पड़ता है । आदिकाल में हमें सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य, लौकिक साहित्य इस प्रकार मिलते है ।

सिद्ध साहित्य :- चौरासी सिद्धों की साहित्यिक रचनाएँ है । सरहपा, लुइया, विरूपा, कव्हपा, कुक्करिया, ताँतिया आदि सिद्धों की रचनाएँ इस कोटि में आती हैं ।

जैन साहित्य :- जैन धर्म की कथाओं, दार्शनिक मन्तव्यों या उपदेशों को आधार बनाया गया है । श्रावकाचार, भरतेश्वर, बाहुबली रास, चन्दन बाला रास, स्थूलिभद्र रास, खेतगिरि रास, नेमिनाथ रास ।

नाथ साहित्य :- गोरखनाथ, चौरंथीनाथ, गोपीचन्द, चुणकरनाथ, भरथरी, जलन्ध्रीपाद आदि हठयोगी कवियों की रचनाएँ हैं ।

रासो साहित्य :- राजाओं की वीरगाथाएँ मिलती है । हम्मीर रासो, खुमाणरासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो ।

लौकिक साहित्य :- लौकिक विषयों को मुख्य आधार बनाया गया है । यथा ढोला मारुरा दूहा, जयचन्द्र प्रकाश, जयमयंक-जस चन्द्रिका, वसन्त विलास और खुसरो की पहेलियाँ आदि ।

'नरपति नाल्ह' रचित 'बीसलदेव रासो' कथानक की द्रष्टि से भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर नरेश बीसलदेव चौहान के तृतीय विवाह, वियोग और पुर्नमिलन की गाथा प्रस्तुत की गई है । राजमती की बातों से रुष्ट होकर राजा उड़ीसा प्रस्थान करता है परिणामतः बारह वर्ष तक रानी वियोग सहन करती है । रानी में एक कुलीन गृहिणी का स्वाभिमान पग पग पर परिलक्षित होता है । इसी प्रकार काव्य के वर्णनों में एक संस्कार दृष्टि मिलती है जो नारी गरिमा की स्थापना करती है । चार खण्डों में लिखा गया रासो का तृतीय खंड का बारहमासा और वियोग वर्णन अधिक आकर्षक और मर्मस्पर्शी है ।

'चन्द वरदायी' द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' में भी संयोगिता स्वयंवर का आयोजन किया गया है । संयोगिता पृथ्वीराज की मूर्ति को माला पहनाती है - पृथ्वीराज - संयोगिता से गांधर्व विवाह करते हैं । दूसरी जगह शहाबुद्दीन एक सुंदरी पर आसक्त था वह सुन्दरी पठान सरदार हुशेन शाह को चाहती थी । शहाबुद्दीन के तंग करने पर वह पृथ्वीराज की शरण में आ गये । शहाबुद्दीन के वापस मांगने पर पृथ्वीराज ने कहा कि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म हैं । अतः नारी की भी रक्षा होती थी ।

सारांश यह है कि आदिकाल में रासो काव्य परंपरा ही प्रवाहमान रहा । जो वीरगाथाओं से परिपूर्ण है । वीर काव्य परंपरा के कवि हुए है । कवि का उद्देश्य अपनी काव्य रचना द्वारा अपने आश्रयदाता की श्रेष्ठता तथा विरोधियों की हीनता का ही प्रदर्शन होना था ।

'हेमचंद्र' द्वारा रचित 'सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' है । उसमें नारी की वीर भावना प्रकट होती है ।

''भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु ।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु ।''

अर्थात :- भला हुआ जो मारा गया, हे बहन । हमारा कांत । यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती ।

'कुमार पाल प्रतिबोध ' संवत -1241 'सोमप्रभसूरि' द्वारा रचित एक गद्यपद्यमय संस्कृत - प्राकृत - काव्य है । इसमें नारी की विरहावस्था का चित्रण हुआ है । उसमें लिखा है -

''पिय हउँ थक्किय सचलु दिणु तुह विरहग्गि किलंत ।
थोड्ड जल जिमि मच्छलिय तल्लो विल्लि करंत ।।''

अर्थात :– हे प्रिय ! मैं सारे दिन तेरी विरहाग्नि में वैसे ही कड़कड़ाती रही जैसे थोड़े जल में मछली तलवेली करती है ।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल संवत् 1050 से लेकर 1375 तक अर्थात् महाराज भोज के समय से लेकर हम्मीरदेव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है । आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच डेढ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है - धर्म, नीति, श्रृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती है । राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, श्रृंगार आदि के फूटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे । खुसरों पहेलियां और मुकरियाँ कर रहे थे ।

''एक नार ने अचरज किया । साँप मार पिंजडे में दिया ।।
जो जो साँप ताल को खाए । सूखे ताल साँप मर जाए ।।'' (दियाबत्ती)

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी का अनुमान है कि प्राकृत पढ़े पंडित ही उस समय कविता नहीं करते थे । जन साधारण की बोली में गीत, दोहे आदि प्रचलित चले आते रहे होंगे जिन्हें पंडित लोग गँवारु समझते रहे होंगे । भारत के इतिहास में यह वह समय था कि मुसलमानों के हमले उत्तर पश्चिम की ओर से लगातार होते रहते थे । हर्षवर्धन के उपरांत ही साम्राज्यभावना देश से अंतर्हित हो गई थी और खंड-खंड होकर राजपूत राजा पश्चिम की ओर प्रतिष्ठित थे । कभी तो शौर्य प्रदर्शन मात्र के लिये यों ही लड़ा करते थे । तात्पर्य यह कि हिन्दी साहित्य का अभ्युदय लड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था ।

मध्यकाल :–

आदिकालीन काव्य में जो विरक्ति और विलास-जनित नारी-भावना का रुप है वही भक्तिकाल और रीतिकाल में उपलब्ध है । इस लोक से परे किसी सुख की कल्पना में लीन पुरुष उस प्रवृत्ति का दमन करना चाहता है । काम के दमन से नारी के प्रति विरक्ति की भावना जागृत होती है ओर उसकी अस्वस्थ प्रबलता से भोग की भावना का जन्म होता है ।

भक्तिकाल :-

मध्युगीन काव्य-धार्मिकता एवं ईश्वर भक्ति के लक्ष्य को केन्द्र में रखकर लिखा गया काव्य है । इसके रचयिता संत एवं भक्त कवि थे । उनकी द्रष्टि इहलोक की अपेक्षा परलोक पर अधिक केन्द्रित थी । इन कवियों ने आत्मशुद्धि के साथ आदर्श समाज-व्यवस्था का चित्र भी प्रस्तुत किया । मानव कल्याण, विश्व-बंधुत्व, मानव-समानता आदि के उच्चादर्श भी वह प्रस्तुत करता है । "मुस्लिम काल में जितने साहित्यक आंदोलन और उत्थान हुए सबकी मूल प्रेरणा भी धार्मिक ही रही" । (5) भक्तिकाल में धार्मिक काव्यों की अधिकतर रचना हुई । संतो का आदर्श तो ऐन्द्रिक सुखों का पूर्ण परित्याग था । इस मार्ग में स्त्री सबसे बड़ी बाधा मानी गई । परिणाम स्वरुप स्त्री को निन्दनीय माना जाने लगा, उसे नर्क का द्वार कहा जाने लगा। भारत में वासनाओं के दमन के लिए सर्वप्रथम काम का दमन अनिवार्य माना गया, जिसका केन्द्र स्त्री है । लगभग 200 ई.पू. से ही इस भावना का प्रसार हो रहा था । पारिवारिक जीवन को हेय समझा जाने लगा । इसा की 14 वीं -16 वीं शताब्दी में यह भावना खूब प्रचलित रही ।

भक्ति की ओर मुड़ने का कारण था कि मुसलमानों ने भारत को विजय कर लिया था और उनके द्वारा हिन्दूधर्म पर आघात होते देखकर हिन्दू जनता विचलित हो उठी । उसी समय दक्षिण से आई भक्ति की धारा का सहारा उन्हें मिला । कबीर, तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों के शब्दों में जनता की वाणी फूट पड़ी । राजनीतिक परतंत्रता ने जग-जीवन को विश्रृंखलित व जर्जर ही नहीं बना दिया था, वरन् उनकी आत्मा को मलिन व चरित्र को पतित भी कर दिया था । तुलसीदास ने अपने युग को आशा का संदेश दिया और जीवन में नयी चेतना का संचार किया । यह भारतीय संस्कृति के ह्रास व विघटन का युग था ।

भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण उपासक हुए । निर्गुणोपासक संतो में कबीर, जायसी, दादू आदि आते है । और सगुणोपासक में तुलसी, सूर आदि आते है । सांप्रदायिक द्रष्टि से इन चारों में भेद रहा हो पर नारी के संबंध में इनका द्रष्टिकोण एक ही है । भक्तियुग की धाराओं में नारी के दो रुप मिलते है । प्रथम रुप लौकिक तथा यथार्थ और द्वितिय काल्पनिक, पारलौकिक, अलौकिक तथा आदर्श । प्रथम रुप में नारी निन्दनीय, दुर्गुणों की खान और माया के प्रतीक रुप है । और द्वितीय रुप में वह ग्राह्य तथा आदरणीय है। लौकिक रुप की नारी को सभी भक्त कवि घृणात्मक-भावना की अभिव्यंजना करते है । क्रोध और हिंसा से भरी हुई इनकी भावना नारी को आध्यात्मिक मार्ग की बाधा रुप में देखते हैं । नारी में तीव्र आकर्षण होता है ; सन्तों को उससे दूर रहने के लिए कवियोंने बार बार चेतावनी दी है । इन कवियों ने नारी को 'सर्पिणी', 'बाधिनी', 'पैनी छूरी', 'विष की बेलि' आदि विशेषण दिए हैं । प्रेम

के क्षेत्र में भी नारी को अस्थिर तथा छलपूर्ण माना । नारी को इतना अधिक दुर्गुणों से युक्त और अविश्वसनीय माना कि उसकी तुलना ढोल-गॅवार और पशु से की । भक्त कवियों की नारी के प्रति यह जो भावना रही है उसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने नारी को सिर्फ 'कामिनी' रुप में ही देखा। परिणाम स्वरुप वे नारी के प्रेम और कर्तव्य को न देख सकें । और वे नारी के गृहिणी रुप एवम् मातृ-रुप का भी आदर न कर सके । माता का मूल्य इतना ही माना कि उसका पुत्र धार्मिक हो । उस समय स्वयं नारी में भी कोई आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की भावना नहीं दिखाई पड़ती । नारी की यह अनादर भावना को स्मृतियों तथा पुराणों में उनका स्पष्ट प्रभाव है । नारी का अलौकिक रुप जो आध्यात्मिक मार्ग की वस्तु है । इस आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में परमात्मा और आत्मा का, प्रेमी-प्रेमिका, या पति-पत्नी का संबंध व्यक्त है । आध्यात्मिक रति का आदर्श समस्त भक्ति संप्रदायों में सन्मान हुआ । इसका आधार यह है -

> ''तद्यया प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न वाह्यं किंचन
> वेद नांतरमेव मेवायं पुरुष प्राज्ञेनात्मा संपरिष्वक्तो
> न वाह्यं किंचन वेद नान्तरम् । '' (6)

कबीर की पतिव्रता-विरहिणी , सूर की गोपियों, तुलसी की सीता, पार्वती तथा कौशल्या और जायसी की पद्मावती आदि में नारी आदर्श नारियों के रुप में उपस्थित हुई है । यह विचित्र है कि जो कवि स्त्रियों के संबंध में असहिष्णु हो वही अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नारी साधन-स्वरुप बनाता है । संभवतः यह लौकिक भूमि पर नारी-आकर्षण को रुद्ध करने के कारण ही हुआ हो । किन्तु भक्त कवि यथार्थ और आदर्श को एक न कर पाए ।

रीतिकाल :-

अन्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा मुग़ल अधिक उदार और सहिष्णु थे । उनके राज्यकाल में शांति का वातावरण छा गया था, उनकी कलाप्रियता तथा विलास प्रियता ने अनेक देशी राजाओं को भी प्रभावित किया । रीतिकालीन काव्य की प्रधान प्रवृत्ति श्रृँगार है । धीरे-धीरे कविता जनता की वस्तु न रहकर दरबारों की चीज़ हो गई । आचार्य प्रवर पंडित रामचन्द्र शुक्लजी के शब्दों में ''राजाश्रय लोलुप मंगते कवियों के कारण कविता केवल वाक्पटुता या शब्दों का शतरंज बन गई, विषयी लोगों के काम की चीज़ हो गई ।'' (7) हिन्दी साहित्य के इतिहास में शुक्लजी ने लिखा है कि श्रृंगार के वर्णनों को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था । इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था । मालिकों का मनोरंजन करने के लिए या उन्हें संतुष्ट करने के लिए उन्होंने काम शास्त्र,

अलंकार शास्त्र तथा रस-शास्त्र के माध्यम से प्रेम-क्रीडाओं, उक्ति-वैचित्र्य तथा नायक-नायिकाओं के विभिन्न भेदों का परिचय प्राप्त किया । फल स्वरुप वे श्रृंगार, भोग और नायिका-भेद के संकीर्ण दायरे में ही घूमते रहे । इसलिए शुक्लजी यहाँ तक लिखते है कि ''हिन्दी के रीतिकाल के कवि तो मानो राजा-महाराजाओं की कामवासना को उत्तेजित करने के लिए ही रखे जाते थे ।'' (8) अस्तु, नारी कविता का केन्द्र-बिन्दु हो गई । ''जोग हू ते कठिन संजोग पर नारी को'' देखने और प्राप्त करने का प्रयत्न महानतम हो गया । रीतिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण की श्रृँगारमयी लीलाओं का सूक्ष्म और भेद-विभेदमयी व्याख्या की । इन कवियों की रचना राधा नाम रखकर भी उसके गूढ़ गंभीर प्रेम, एकान्त निष्ठा, पूर्ण आत्म समर्पण और शक्ति तथा संकोच से हीन है । इन का द्दष्टिकोण घोर लौकिक था । उनमें हृदय की विशालता और भाव की स्वच्छता की सुगंध नहीं, वासना की दुर्गन्ध है । मनोवैज्ञानिक द्दष्टिकोंण से देखे तो ये भक्तियुग के काम-दमन की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अति काम था । इसके अतिरिक्त युद्ध और जागृति के अभाव पर अपरिवर्तनशील जड़ता छा जाती है तो समाज स्त्रैण हो जाता है, स्त्री भोग का साधन हो जाती है । रीतिकालीन काव्य में स्त्री केलिगृह की सीमा में आबद्ध हो जाती है । द्विवेदीजी ने लिखा है ''संभवत् : इस काव्य को नारी-केन्द्रित कहा जा सकता है । किन्तु नारी का चित्रण भी यहाँ सामन्ती-संस्कृति के द्दष्टिकोण से प्रभावित है । यहाँ कोई व्यक्ति या समाज के संघटन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथा संभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है ।'' (9) इससे स्पष्ट है कि एक मात्र श्रृँगार के क्षेत्र में नारी को देखनेवाले इन कवियों की द्दष्टि नारी के गुणों आदि के संबंध में संकुचित है । ''अन्तरतम में बसने वाले हृदय को वे कभी भी पूर्णतया नहीं छू सके । उन कवियों के लिए नारी-हृदय एक खिलवाड़ तथा मनोविनोद की वस्तु थी ।'' (10) वह पुरुष के आकर्षण का केन्द्र मात्र है । इसके सामाजिक अस्तित्व के कहीं दर्शन ही नहीं होते । इसका कारण यह है कि वे मानव जीवन से दूर थे अतएव नारी की वास्तविक स्थिति से अपरिचित थे । या तो उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को जीवनोपार्जन के लिए अनुपयोगी एवं परंपराओं के प्रतिकूल माना । इसीलिए नंदिनी नारी के बंधनों का उल्लेख इस काल की कविताओं में कहीं नहीं मिलता । इस कविता में मनुष्य के दर्शन नहीं होते । नर-नारी के पवित्र मिलन की दिव्य अनुभूति के दर्शन भी यदि इसमें होते तो वह श्रेष्ठ काव्य की सीमा में रखकर आंका जा सकता था ।

इस प्रकार हम देखते है कि मध्ययुग में नारी भावना की एक सीमा भक्तिकाल के वैराग्य काव्य में तथा दूसरी रीतिकाल के विलासमय काव्य में मिलती है । दोनों का केन्द्र विरोधी सीमायें होते हुए भी एक ही है। गौरवमयी नारी भावना का दोनों में अभाव है । संत कवि स्त्री से दूर भागते है तो श्रृँगारी कवि ने उसे सस्तारुप दे दिया। गंभीर और विवेचनात्मक द्दष्टिकोण का दोनों ही में अभाव है । पुरुष के

जीवन में नारी का स्थान या उसका महत्व क्या है ? नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है ? देश और जाति के जीवन में नारी का क्या मूल्य है ? यह सब देखने का प्रयत्न मध्ययुगीन कवियों ने नहीं किया ।

आधुनिक काल :-

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ । लगभग पूरे भारत पर अंग्रेजी शासन स्थापित हो चुका था । ईस्ट इंडिया कंपनी अंग्रेजी कानून एवं शिक्षा का प्रचार कर रही थी । किन्तु भारती और यूरोपीय सभ्यता में अंतर होने के कारण जनता में नए शासन के प्रति अविश्वास रहा है जिसका परिणाम सन् 1857 का ग़दर था । ये सफल तो न हुआ पर भारत में नव जागृति के प्रभात का संकेत था । उसके बाद संपूर्ण भारत पर अंग्रेजों का शासन रहा । भारतीय विदेशी साहित्य और सभ्यता के प्रभाव में आकर वह अपने को पहचानने में सक्षम हुआ और युगों से चली आई जड़ता को दूर करने के लिए सजग़ हुआ ।

राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आदि परिस्थितियों में परिवर्तन हुए । अंग्रेजो की आर्थिक नीति ने भारत की औद्योगिक सम्पन्नता को नष्ट कर दिया था जिससे भारतीयों को असंतोष हुआ । अंग्रेजी क़ानून ने भारतवासियों के धार्मिक विश्वासों तथा धर्मसूत्रों की भावनाओं पर भी आघात पहुँचाया । इस प्रकार की उथल-पुथल के बीच भारतीय साहित्यकार अपनी गतिहीन स्थिरता त्यागने लगे । 19 वीं शताब्दी में गद्य-साहित्य का विशेष विकास हुआ एवम् काव्य में कई प्रकार के विषय भी आए ।

भारत के दुःख दारिद्रय और आर्थिक अवस्था पर क्षोभ, उसकी पराधीनता पर चिन्ता, राजनीतिक और शासन संबंधी सुधारों की माँग तथा आपसी संगठन के लिए भारतीयों को प्रोत्साहन आदि के भाव भारतेन्दुकालीन कविता में स्थान-स्थान पर मिलते हैं । भारतेन्दुजी ने और कुछ कवियों ने नारी को लेकर सुधार भावना से प्रेरित उनकी शिक्षा आदि की आवश्यकता की और लक्ष्य किया । समाज की कुरीतियों के उन्मूलन को प्रचार भी इस युग के कवियों ने किया । इसमें मूख्य थी जातिभेद, अविद्या, स्त्रियों की शिक्षाहीनता, विवाहों के समय का अपव्यय, बहु-विवाह, बाल-विवाह और विधवा-विवाह निषेध, इन सबमें सुधार का आग्रह भी था। इसीलिए उन्नीसवीं शताब्दी के भावों को नवोन्मेष की शताब्दी भी कहा जा सकता है । इस काल में विश्व के विभिन्न हिस्सों में नूतन राजनीतिक चेतना का पादुर्भाव हुआ । विभिन्न विचारधाराएँ विज्ञान एवं संस्कृति की उल्लेखनीय प्रगति आदि के फलस्वरुप आर्थिक परिस्थितियों तथा सामाजिक जीवन में गहरे परिवर्तन हुए । आशय यह कि मानवी संबंधो में महान परिवर्तन घटित हुए । विभिन्न माध्यमों से नई विचारधाराएँ इस देश में प्रविष्ट होने लगी तथा देशवासियों का ध्यान अपने महान अतीत की ओर गया । अतीत की समृद्ध परंपरा से पर्याप्त प्रेरणा ली

गई । जीवन का व्यापक परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुआ । व्यापक बौद्धिक सांस्कृतिक द्रष्टि विकसित हुई । लोगों में रचनात्मक उत्साह व्याप्त हुआ । उनकी द्रष्टि धरती पर गिरे हुए तथा उपेक्षित नर-नारियों की ओर गई । द्विवेदीजीने लिखा है "हमारा देश नए मोड़ पर आ-कर खड़ा हो गया और उसके साथ ही देश की साहित्यिक चेतना भी नवीन दिशा की ओर मुड़ी । प्राचीन भारतीय संस्कार तब भी प्रबल रुप से वर्तमान थे । परन्तु वे भी बिल्कुल नई दिशा में मुँह करके खड़े हो गये । यहाँ से शिक्षित समुदाय में एक नए द्रष्टिकोण की संभावना उत्पन्न हुई । "(11)

1857 में भारतीय शासन की बागडोर ईस्ट ईंडिया कंपनी के हाथ से निकलकर अंग्रेजी सरकार महारानी विक्टोरिया के हाथ में आई । 1857 में कई विश्व-विद्यालयों की स्थापना हुई । अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी । अंग्रेजी साहित्य के प्रणयन और अध्ययन से नवयुग की जागृति और विज्ञान तथा स्वतंत्रता संबंधी विचार भारत के उर्वर मस्तिष्क में घर करने लगे । नारी धीरे-धीरे जागरुक हो कर वैदिक महत्व से संपन्न अपने स्वरुप तथा अधिकारों को समझने लगी । विदेशी सभ्यता से शिक्षा का प्रचार हुआ उससे प्रभावित हो कर नारी पर्दा-प्रथा से मुक्त हो कर समाज की दिशा में द्रष्टिपात करने लगी थी । सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना हुई । राजाराममोहनराय ने बाल विवाह बहिष्कार और विधवा-विवाह का उन्मूलन किया और उन्कें प्रयत्नों से सती-प्रथा तो नाम-मात्र को रह गयी । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने युगानुकूल विधवा-विवाह-क़ानून को अपने प्रयत्न से चरित्रार्थ कराया और नारी-स्वातंत्र्य के हेतु अथक प्रयत्न किया । स्त्री-स्वातंत्र्य की उन्नायिका श्रीमती एनी बेसंट का भारत सदैव ऋणी रहेगा । उन्होंने थियोसाफीकल सोसायटी की स्थापना की थी । विवेकानंद जैसे महान् चिन्तकों का भी जन्म हुआ । इन सब ने सिद्ध कर दिया की नारी में भी प्राण है, मन है, बुद्धि है, पचेन्द्रिय है, वे मृतयन्त्र नहीं है ।

बीसवीं शताब्दी के महात्मा गांधीजी ने नारी को घर के सीमित वातावरण से मुक्त किया और उसे जीवन-संग्राम की ओर अग्रसर किया । वैदिक काल से लेकर गांधीयुग तक स्त्रियाँ जागृक हो कर जीवन-संघर्ष में, पुरुषों के साथ भाग ले चुकी थीं और अनेक बार पुरुषों का भी नेतृत्व नारियों ने किया था । रानी दुर्गावती, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि इसके ज्वलंत प्रमाण है । रानी लक्ष्मीबाई के संबंध में सर ह्यूरोज ने कहा था कि वह विद्रोहियों की सबसे कुशल सेनापति थी । जीवन-संग्राम में भाग लेने वाली विजय लक्ष्मी पंडित, लक्ष्मी मेनन आदि नारी शक्ति का शंखनाद करने वाली आधुनिक नारी जाति की क्रान्ति-मूर्तियाँ हैं । पुरातन नारी-सभ्यता के आधार पर, आज की नारी को भी अधिक स्वतंत्रता मिली । अंग्रेजी शासन के युग में भारत की जनता की गतिविधि अत्यंत आंग्लमय बन गयी थी तथा अपने देश की स्वजातीय महिला एवं संस्कृति लुप्त-प्रायः हो गयी थी, किन्तु इस विकट परिस्थिति

में भी भारतीय संस्कृति के उन्नायक अरविंदजी, महात्माजी, दयानंदजी, विवेकानंदजी आदि ने अपने ज्ञान-बल पर पाश्चात्य देशों में भ्रमण कर, हिन्दू संस्कृति का प्रचार किया । धीरे-धीरे अंग्रेजी सभ्यता से विमोहित भारतवासी की प्रवृत्ति हिन्दू संस्कृति की ओर प्रत्यावर्तित होने लगी । स्त्री जाती के लिए घरेलू क्षेत्र से ले कर सामाजिक, सांस्कृतिक आदि अन्य क्षेत्रो में विकास आवश्यक है । उच्च-ज्ञान प्राप्त करके अन्य देशों की महिलाओं के समान, भारतीय नारी-हृदय को आंदोलित करने के लिए कवियों ने स्वस्थ विचारों का प्रचार किया ।

परिवर्तित परिस्थितियों में युग की चेतना का कविता में मुखर होना स्वाभाविक था । भारतीय साहित्य में नारी की महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा हुई है । वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास ने नारी को उन्नत पद पर प्रतिष्ठित किया । उन्होंने रघुवंश के आरंभ में वाक् एवं अर्थ के अभिन्न रुप में पार्वती और परमेश्वर की वंदना की । प्रसाद, पंत आदि हिन्दी कवियों ने नारी के आदर्श स्वरुप को सामने रखा है तथा लज्जाशील भारतीय ललना को प्रसादजीने महातरु मानव पर अवलम्बित रहने वाली लता के रुप प्रस्तुत किया है । छायावादी काव्य में नारी का स्वरुप अत्यंत उदात्त व आदर्शोन्मुख रहा है । वहाँ उनका स्वरुप स्वर्गीय है । वह मायाविनी, विलासिनी ही नहीं, मनस्विनी व तपस्विनी भी है । कवि गुप्तजी के समक्ष नारी सहनशील एवं धैर्यवती होती है । उसके कोमल गुण और स्वभाव पुरुष में आने से पुरुष महान बन जाता है ।

सभी साहित्यिक एवं कलाकार नारी जागरण के प्रति संवेदना का भाव व्यक्त करते हैं । आदर्श विचारक बर्नार्ड शो के अनुसार, विश्व में स्वस्थशील की स्थिरता तब तक नहीं हो सकती जब तक नर और नारी में पचास प्रतिशत आधिकारों का समान वितरण न हो । सुप्रसिद्ध विचारक प्लेटो ने भी कहा है : "कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नत नहीं हो सकता जब तक उसकी आधी जन संख्या अशिक्षित रहेगी । प्रत्येक कर्म-क्षेत्र में स्त्री और पुरुष को समान रुप से क्रियाशील होना चाहिए । जिस देश में स्त्रियाँ पुरुषों से पिछड़ी हुई रहेंगी, वह देश सभ्यता एवं संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं से सर्वथा वंचित रहेगा ।" (12)

आधुनिक मानवतावाद के प्रकाश में जहां गुप्तजी के काव्य में उपेक्षित अनाद्रत पर महिमामयी नारियाँ सादर स्थान प्राप्त कर सकी है, वहाँ मानवतावाद मनोविज्ञान के विघटन व्यक्तित्व वाले संकुचित अर्थ को लांघकर व्यापक एवं स्वस्थ रुप पा सका है । इसी मानवतावादी द्रष्टि से उन्होंने उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया के अवहेलित गौरव को, उनके भीतर निहित त्याग और व्यथा को वाणी दी है । उन्होंने अपने वैष्णव संस्कारों के माध्यम से आधुनिक युग को देखा है, फलतः समस्त कटुता, विषमता, द्वन्द्व एवं संघर्ष पर उनका आदर्शोन्मुख आशावादी, नैतिक एवं सामाजिक स्वस्थ

जीवन-दर्शन परिव्याप्त है । नारी के सौम्य तथा रौद्ररुप को कवि गुप्तजीने नारी में अनन्त माधुर्य के विकास का दर्शन किया है । कवि ने प्राचीन वैदिक नारी के आदर्श का नवीन नारी के रुप में अंकन किया है । क्योंकि नर का जीवन नारी के बिना अधूरा है एक ओर जहाँ वह प्रेरणा है वहीं शक्तिदायिनी है , पोषित है, पोषक भी है । शक्ति सभी को संरक्षण देती है, शक्ति विस्तार भावना की द्योतक भी है इसी भाव को स्मरण करते हुए नारी को श्रद्धामयी कहकर गुप्तजीने मानव जननी होने के नाते एक रचना संबंधी तर्क द्वारा मनुष्यों में श्रेष्ठतम माना - "एक नहीं दों-दों मात्राएँ, नर से भारी नारी ।" गुप्तजीने अपनी कृतियों में अन्यान्य नारी चरित्रों के द्वारा जीवन के एक व्यापक क्षेत्र को उन्नत आदर्शों पर प्रस्तुत किया है। वैदिक नारी के श्रेष्ठ स्वरुप को ही युगानुकूल परिवर्तन के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। गुप्त साहित्य में नारी के उत्कृष्ट रुप का चित्रण हुआ है । वह अलौकिक गुणों के संपन्न होने पर भी मर्त्यलोक में उत्पन्न साधारण मानवी है । कवि ने अलौलिकता को लौकिकता प्रदान की है । मानिनी यशोधरा, प्रेमिका उर्मिला, रामसाहित्या की प्रेरणा देने वाली रत्नावली, विलायिनी उत्तरा, मृगनयनी शकुन्तला, शक्ति-युक्त सैरन्ध्री, रागिनी राधा, वियोगिनी विष्णुप्रिया आदि अन्यान्य नारी पात्रों को ले कर कवि ने अपने काव्य को सौन्दर्य से भर दिया है ।

कवि की रचना 'जयिनी' के वार्तालाप में आदर्श दाम्पत्य-भाव व्यंजित होता है । पति के बाह्य कार्यो में पूर्ण सहयोग देने वाली कार्ल मार्क्स की प्रेमिका एवं सहधर्मिणी जयिनी आधुनिक साम्यवाद के अनुकूल प्रेम और त्याग की प्राचीन मधुमती आधारशिला पर प्रतिष्ठित मूर्ति है ।" [13] सांस्कृतिक एवं नैतिक आदर्शो पर प्रतिष्ठित गुप्तजी की नारी वैदिक धातुओं से निर्मित आधुनिक नारी की प्रतिमूर्ति है । वैदिक आदर्श में नारी की पृथ्वी के साथ तुलना की गयी है । शिक्षा समुच्चय का भाव गुप्तजी की कुसुमादपि मृदुल नारियों में दिखलाई पड़ता है । सिद्ध मार्ग की बाधक न होनेवाली यशोधरा आत्मज्ञान से पूर्ण, विदूषी नारी थी । गुप्तजी के नारी चित्रण में विद्या एवं अविद्या माया का अंकन क्रम से उच्च और निकृष्ट पात्रों के द्वारा, यत्र-तत्र अलौकिक नारी के रुप में, पराशक्ति के गुणों की अभिव्यक्ति हुई है । उदाहरणार्थ शील और सौन्दर्य से मंडित यशोधरा, उर्मिला, सीता आदि के चरित्र में अलौकिक रंग चढ़ गया है । रत्नावली, विष्णुप्रिया आदि पात्रों में नारी कें मानवीय आदर्श का सफल अंकन हुआ है । विचलित मन एवं नारी-चांचल्य की साकार मूर्ति कैकेयी अपनी अविद्या रुपी बुद्धि भ्रष्टता और कुमन्त्रणा से उत्पन्न अकार्यों के लिए पश्चाताप कर सयत्न अपने चरित्र के परिवर्तनार्थ क्रियाशील है । मानवीय दुर्बलता से ग्रस्त कैकेयी अपने कलुषित कर्मो को पश्चाताप की पावन गंगा से धो डालती है । शूर्पणखा, मन्थरा और अन्य पात्र जैसे अशुद्ध तामसी वृत्ति से ओत-प्रोत अविद्या माया के प्रतीक है । व्यक्तिगत दौर्बल्य से ऐसे पात्र स्वयं उठने में असमर्थ है और सत् - संग का भी इन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता । विभिन्न शील वर्गो

की नारियों के चित्रण में सफल गुप्तजी, परा शक्ति के प्रति अत्यंत कोमल भावना से आकृष्ट हुए है । सौम्य शक्ति के रुप में वह लोक-संग्रह एवं विश्वमंगल की दिशा में मनुष्यों को प्रेरणा देते हैं तथा रौद्र-शक्ति के रुप में जगत् की रक्षा करने वाली दुर्गा बन कर दैत्यों का संहार करती है । जीवन की विषमताओं को मिटाने वाली शक्ति के रुप में पराशक्ति के रौद्र रुप का वर्णन 'शक्ति' कविता में किया गया है । 'पंचवटी' में पुरुष के विशेष अधिकार के विरुद्ध स्वर मुखर किया है ।

"नर-कृत शास्त्रों के सब बन्धन है नारी को ही लेकर ।
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर ।। "[14]

कवि का मानवतावादी जीवन-दर्शन तप और त्याग तथा प्रेम और करुणा की प्रवृतियों के रुप में गौर, शची और विष्णुप्रिया के व्यक्तित्वों में प्रकट होता है । सांस्कृतिक भावना की प्रेरणा से उन्होंने शील के नैतिक आदर्श को भी व्यक्त किया है ।

आधुनिक कवि के मस्तिष्क के निर्माण में जो परिस्थितियाँ रही है उसमें कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारण प्रकट हुए, जो कवि को नवीन प्रकार की नारी-भावना के निर्माण की ओर ले गए। ये कारण निम्नलिखित है ।

1. प्राचीन के प्रति नव-जागृत आकर्षण
2. पश्चिमी विचारों और साहित्य का प्रभाव
3. भक्तियुग और रीति-युग की नारी भावना के प्रति विद्रोह
4. रविन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव
5. समाज-सुधार की लहर का प्रभाव
6. स्त्री-आंदोलन का प्रभाव
7. इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव

(1) प्राचीन के प्रति नव-जागृत आकर्षण :-

प्रारंभ में पश्चिमी विद्धानों ने प्राचीन भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्पति की खोज प्रारंभ की थी, किन्तु राष्ट्रीय भावना और सुधार भावना के विकास के साथ भारतीय विद्धानों का ध्यान भी विशेष रुप से आकर्षित हुआ । स्वतंत्रता की प्रेरणा ने भारतीयों में जो प्रेम जागृत किया उसमें आर्यसमाज ने महत्वपूर्ण कार्य किया । उसके आदर्श वैदिक थे । प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य की ओर आकर्षण का फल यह हुआ कि द्विवेदीजी, कालिदास, रामदहिन मिश्र, माधवराव सप्रे, आदि ने संस्कृत-साहित्य-सागर में से हिन्दी के लिए रत्न खोजने का प्रयत्न किया । इन्द्र वेदालंकार, द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, राधा प्रसादशास्त्री, अखिलानंद शर्मा, भवानीदयाल

सन्यासी, नरदेव शास्त्री और गंगानाथ झा आदि ने वेद-वेदांत पुराण आदि का अध्ययन कर प्राचीन धर्म तथा संस्कृति के लोगों का परिचय कराया । अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे गए, साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में प्राचीन महान् पुरुषों और दिव्य नारियों के जीवन-चरित भी छपा करते थे । 'सरस्वती' में 'कामिनी कौतूहल' नामक अंश में प्राचीन प्रसिद्ध तथा यशस्वी नारियों के संबंध में लिखा जाता था । पंतजी ने लिखा है कि जिन प्राचीन संस्कृतियों को बुझते हुए अंगारों से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हें हमें सम्मान की द्दष्टि से देखना चाहिए । नहीं तो हम जीवन से अखंडनीय सत्य को नहीं समझ सकेंगे । इसलिए कवि गुप्तजी भूत को पूत मानते है उन्होंने त्रिपथगा में लिखा है –

''अब भूत चाहे भूत है
पर वह बड़ा ही पूत है ।'' (15)

अतीत गौरव की इस भावना से प्रेरित होकर कवियों ने ऐतिहासिक, पौराणिक तथा प्राचीन साहित्यिक नारी-चरित्रों को नवजीवन प्रदान करके देश और जाति के संमुख उपस्थित किया है । इस तरह भारतीय नारीयों को उनकी गुप्त-शक्ति के प्रति सचेत करने के उद्देश्य से आधुनिक कवियों ने सीता, दमयंती, उर्मिला, यशोधरा, राधा, यशोदा, शकुन्तला, महाश्वेता, कुंती, द्रौपदी, कौशल्या, सुमित्रा, वीरा, सारंघा, लक्ष्मीबाई, पद्मिनी, नूरजहाँ, अनारकली आदि का स्मरण किया है ।

(2) पश्चिमी विचारों और साहित्य का प्रभाव :–

भारत में अंग्रेजो का शासन तो था ही पर सन् 1829 में अंग्रेजी दफ्तर की भाषा होने के कारण भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य हो गया था । भारतीय अंग्रेजी पढ़े - लिखे लोगों की संख्या बढ़ी और उनकी विचार-धारा में परिवर्तन हुआ । पश्चिमी शिक्षा तथा विदेशी संपर्क के सहारे भारतीय युवक पश्चिमी सभ्यता और साहित्य से परिचित हुए । नवीन प्रभावों से उत्पन्न मस्तिष्क के उदार विकास के बुद्धिवाद, प्रकृति की भौतिक सत्ता पर विश्वास और अवांछित रुढ़ियों के प्रति विद्रोह को जन्म दिया । कवियों के नारी-संबंधी द्रष्टिकोण में भी बदलाव आया । 20 वीं शताब्दी का प्रथम दशाब्द बीतते ही भारत में नारी-आंदोलन का सूत्रपात हो गया । नारी की स्वतंत्रता की आवाज की प्रतिध्वनि पंतजी ने की है –

''मुक्त करो नारी को मानव । चिर वंदिनी नारी को,
युग-युग की बर्बरता से, जननी, सखी, प्यारी को ।''

आधुनिक कवि ने अंग्रेजी-साहित्य से भी प्रेरणा ग्रहण की । 20 वीं शताब्दी के उदयकाल में समस्त बँगला - साहित्य पर पश्चिमी प्रभाव है । रविन्द्रनाथ ठाकुर, शैली, कीट्स, स्विनवर्न आदि कवियों की

भाव-प्रणाली को अपने बँगला गीतों में ढाल रहे थे । 'सरस्वती' नामक पत्रिका के प्रारंभिक वर्षो में प्रतिमास टायलर, बायरन, वर्डस्वर्थ आदि की कविताएँ अनुवादित रुप में छपती थीं । हिन्दी के आधुनिक कवि स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) की प्रवृत्ति से अधिक प्रभावित हुए। रोमांटिक प्रवृत्ति का मूलाधार कौतूहल तथा सौन्दर्य-प्रेम है । निराशावाद तथा आदर्श-संसार की कल्पना रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषताएँ है । इससे आधुनिक कवि आकर्षित हुआ परिणाम स्वरुप चली आती हुई काव्यगत रुढ़ियों, निश्चित नियमों, सीमित विचारों को छोड़ना प्रारंभ किया । वह प्रकृति के अद्‌भूत विस्तार तथा सामाजिक व्यक्तियों की स्वाभाविक परिस्थियों से आकर्षित होने लगा ।

(3) भक्ति-युग और रीति-युग की नारी भावना के प्रति विद्रोह :-

पश्चिमी विचार-धारा के प्रभाव ओर शिक्षा-प्रचार ने संसार और जीवन के प्रति भारतीय द्रष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया था और वैज्ञानिक आविष्कारों ने धार्मिक अंध-विश्वासों पर गहरी चोट की थी । आधुनिक युग सन्यास का न रहकर संसार के सुख और रुप से भरे जीवन को सुन्दर मानता है । उनकी द्रष्टि में जीवन की सार्थकता माया अथवा जगृत के त्याग में न होकर उसके आलिंगन करने में है । और इन भावनाओं के मूल में नारी है । पंतजी ने लिखा है –

''तूम्हारे धूने में था प्राण संग में पावन गंगास्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि ! त्रिवेणी की लहेरा का गान ! ''(16)

आधुनिक सौन्दर्य के उपासक नारी को संसार के सौन्दर्य और सुख का मूल कारण मानते है । वह उसके आकर्षण को नारी की शक्ति के रुप में देखते हैं ; जिसके समीप पहुँच कर मादकता की तृप्ति होती है । इसलिए आधुनिक कवि नारी को भूतल की स्वर्गीय किरण के रुप में, निर्वाण के रुप में, चिरंतन आनंद मार्ग की साधिका के रुप में एवम् पथ प्रदर्शिका के रुप में देखते है । उसकी दुर्बलताओं से भी कवि को सहानुभूति रही है । नारी के असत् रुप को भी क्षणिक विकृतिमात्र के रुप में ही देखते हैं । नारी के प्रति यह उदार सहनशील, सहानुभूतिमय, पूजात्मक द्रष्टिकोण स्पष्टतः भक्तिकालीन घृणात्मक भावना की प्रतिक्रिया है ।

जिस प्रकार आधुनिक कवियों ने वैराग्य-प्रसूत भावना का परित्याग किया है, उसी प्रकार रीतिकालीन अति काम-प्रसूत भावना का भी विद्रोह किया है । रीतिकालीन नारीयों ने अपना जो व्यक्तित्व खो दिया था उसके प्रति आधुनिक कवि अत्यंत पीड़ित होते है । पंतजी ने लिखा –

' योनिमात्र रह गई मानवी
निरु आत्मा कर अर्पणा।' (17)

वह 'काम-कारा की वंदिनी' के रुप में नारी को नहीं देख सकते । पुरुष के ऐन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त उसके मानसिक जीवन में नारी का मूल्य, उसका निजी व्यक्तित्व, सृष्टि के लिए नारी का महत्व, राष्ट्र की उन्नति में नारी का योगदान ये सब आधुनिक कवि देखता है । इसलिए आधुकि काव्य में हम उस नारी को देखते है जो जीवन के सभी कार्य-क्षेत्रों में सहयोग, प्रेरणा और अवलंब देती है । रीतिकालीन कवियों ने मातृरुप की एकान्त उपेक्षा की थी किन्तु आधुनिक कवि की नायिका कहती है –

' वधू सदा मै अपने घर की पर क्या पूर्ति वासना भर की,
सावधान बिज कुलझार की जननि मुझको जानो ।' (18)

आधुनिक कवि काम-वासना का आदर करता है, क्योंकि वह सृष्टि का मूल है ।

'स्वाभाविक है काम-वासना भी हम सब की
और नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जाती कब की ।' (19)

आधुनिक कवि नारी-रुप के क्षणमात्र के दर्शन से नश्वर जगत को भी मंगलमय होते देखता है । रामकुमार वर्मा लिखते है ''मैं जीवनमें रुप के आकर्षण को कम नहीं समझता । उससे जीवन में जागृति आती है। प्रकृति में जो कुछ भी आकर्षण है, उसकी ओर आँखे उठ जाना स्वाभाविक है । लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि रुप का मिशन और आदर्श केवल इन्द्रियों के बाहरी धरातल तक ही न रहे, वरन् इन्द्रियों को पार कर वह आत्मा का तार हिला दे ।'' (20)

आधुनिक कवियों के द्वारा रीतिकालीन नारी-भावना त्याग करने का कारण पश्चिमी संसर्ग और मानवतावादी बुद्धि तो था ही, साथ ही देश की आर्थिक परिस्थिति भी थी । इस प्रकार आधुनिक कवि ने भक्तिकाल की घृणात्मक और रीतिकाल की ऐंद्रिक नारी भावना का अंत करके एक उदार और पूजात्मक भावना की स्थापना की ।

(4) रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव :–

प्राचीन संस्कृत - साहित्य तथा अंग्रेजी - साहित्य ने हिन्दी-साहित्यगत नारी-भावना के परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है , उसी प्रकार बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने नारी-भावना को रुचिता, पावनता, अभौतिकता और दार्शनिकता प्रदान करने का अधिकांश प्रयत्न किया है । 'गीतांजलि' (1910) नामक पुस्तक से उनकी ख्याति हुई । उसके पश्चात् ही हिन्दी के कवि इस महान् कवि की ओर आकृष्ट हुए ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव नारी के संबंध में उनके नारी-संबंधी निबंधो और उनके काव्य से पड़ा है । उनके काव्य का बहुत सा अंश नारी, नारी सौन्दर्य और नारी सृष्टि से संबंध रखता है । नारी भावना का मूल आधार सांसारिक सुखोपभोग है किन्तु ऐन्द्रिक वासना से मुक्त है । ये उनकी सबसे बड़ी

विशेषता है । कवि की द्रष्टि में नारी सौंदर्य तुच्छ नहीं किन्तु परम रमणीय है और साथ ही उपभोग्य । कवि ने यौवन की आंकाक्षाओं को दबाने का प्रयत्न नहीं किया है । उनकी कविताएँ यौनाकर्षण की अपेक्षा भावाकर्षण से युक्त है । भावना मूलतः पवित्र है और कल्पना भौतिक न होकर सरल हृदय की सात्विक उड़ान है । भावना की गहराई और अनुभूति की तीव्रताने रवीन्द्र की नारी भावना को दार्शनिक रंग प्रदान किया । जो 'चित्रा', 'उर्वशी', 'दुइनारी', 'मानसी', 'प्रेमेर अभिषेक' आदि कविताओं में स्पष्ट है ।

हिन्दी के आधुनिक कवियों पर रवीन्द्र के काव्य की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है । छायावादी कवियों ने अपनी प्रिया-भावना तथा मातृ-भावना में बहुत कुछ, रवीन्द्रनाथ के काव्य से प्रेरणा ली है । रवीन्द्रजी नारी-समस्या के प्रति अत्याधिक आकृष्ट थे । उनके नारी-भावना को व्यक्त करनेवाले निबधों में 'दि इंडियन आइडियल आव मैरिज', 'वुमन' तथा 'नारी और मानव सभ्यता', 'स्त्री-पुरुष' आदि उल्लेखनीय है । नारी विधाता की कलात्मक कृति है । वह पुरुष के असंयमीत व्यवहारों को उसके पाशविक तत्वों को प्रेम से नम्र करने में समर्थ होती है । प्रेममयी नारी पूर्ण है , जीवन में उसका स्थान निश्चित है ; इश्वरने उसे प्रत्येक पुरुष के साथ पुरुष की रक्षा हेतु भेजा है । जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरु करती है, तभी से उनका कर्तव्य शुरु हो जाता है । उसी समय उनका चित्त विकसित होता है । प्रेम से वह अनुकूल अथवा विपरीत परिस्थितियों में 'सामाजिक व्यवहार' बहुत बड़े परिवार-सहित अपनी गृहस्थी और पति नाम के एक न चल सकनेवाले बोझ को लेकर चलती है। वह प्रेम नारी के समस्त बंधनों को खोल देता है । मानवता की सबसे बड़ी शक्ति 'सृजन-सामर्थ' वह नारी में है । शिशु-रचना कर वह गृह का निर्माण करती है ।

रविन्द्रजी नारी के दमन और पीड़ित के घोर विरुद्ध थे । भारत में नारी को शक्ति नाम दिया गया है। यदि नारी पुरुष के मस्तिष्क को प्रेरणा न दे तो पुरुष सभ्यता की उच्चतम कृतियों का कर्ता न हो सके । आधुनिक कवियों ने रविन्द्र की उल्लिखित भावनाओं का ग्रहण न भी किया हो किन्तु, इतना निश्चित है कि ज्ञात अथवा अज्ञात रुप से वह इस बंगला-कवि से प्रभावित हुए है ।

(5) समाज-सुधार की लहर का प्रभाव :-

भारतीय स्त्री की दशा सुधारने के लिए 19 वीं शताब्दी से प्रयत्न हो रहे थे जो 20 वीं शताब्दी में अधिक व्यापक और शक्तिशाली हो गए । बाल-विवाह के शाप को दूर करने के लिए बड़ौदा के संस्कृत-बुद्धि महाराज सयाजी राव गायकवाड ने सन् - 1901 में शिशु-विवाह-निषेध के लिए एक एक्ट पास किया, जिसमें विवाह की लघुत्तम आयु लडकियों के लिए 12 वर्ष तथा लड़कों के लिए 16 वर्ष निश्चित कि गई । उसके पश्चात् राय साहब हर बिलास सारदा के प्रयत्नों के फलस्वरुप सन् 1930 में शारदा-बिल पास हुआ, जिसमें लड़कियों के विवाह की आयु 14 वर्ष और लड़कों की 18 वर्ष निश्चित

की गई । आज भारत देश में लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़को के लिए 22 वर्ष के लड़के लड़कियों को विवाह योग्य ठहराया है । विधवा-विवाह-प्रचार के संबंध में भी उन्नति हुई । मैसूर के महारानी स्कूल, आर्य-समाज, पंजाब की प्यूरिटी सोसायटी (Purity society) लखनऊ की हिन्दू विडोरिफार्म लीग [Hindu widow Refarm League] ने विधवाओं के भाग्य को अच्छा करने के उल्लेखनीय प्रयत्न किए हैं ।

1906 में बंबई-सरकार ने एक विधान बनाया, जिसके अनुसार मंदिर के वे अधिकारी, जो देवताओं के लिए स्त्रियों के समर्पण में योग दें, कानूनी रीति से दंड के भागी बना दिए गए । 1909 में मैसूर-सरकार ने मंदिरों में नृत्य की प्रथा को बंद कर दिया । 1925, में डा. मुथुलक्ष्मी रैड्डी आदि के भगीरथ प्रयत्न से पीनल कोड के वह नियम, जो नाबालिग व्यवसाय को अपराध निश्चित् करते है, देवदासियों पर भी लागू किए गए । 20 वीं शताब्दी में ही स्त्री-शिक्षा के विशेष प्रयत्न हुए है और प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता का प्रतिपादन हुआ है । इस शताब्दी की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि स्वयं स्त्रियाँ अपनी दशा सुधारने के लिए उत्साहित होती है । मद्रास में सन् 1917 में 'विमैन्स इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना हुई जिसकी सभानेत्री मिसिज एनी बेसेंट थी । उसके बाद अक्टूबर सन् 1926 में अखिल भारतीय स्त्री सभा [All India womens conference] की प्रथम बैठक हुई, जिसकी प्रथम सभानेत्री बड़ौदा की महारानी चिमना बाई थीं ।

इन सुधार-आंदोलन की प्रतिध्वनि उसका प्रभाव आधुनिक काव्य के नारी-भावना पर भी पड़ा है । नारी-स्वातंत्र्य की भावना का विकास हुआ । समाज सुधार की भावना ने 'मानवी' को जन्म दिया और मानवतावादी द्रष्टिकोण का विकास हुआ है ।

(6) स्त्री – आंदोलन का प्रभाव :–

नारी - समस्या संबंधी जो आंदोलन हो रहे थे उसने स्त्री-आंदोलन के रुप में स्त्रियों के निजी प्रयत्न को प्रेरणा दी । श्रीमती चट्टोपाध्याय के शब्दों में ''यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को ही पुनः प्राप्त करने और अमल में लाने का प्रयत्न है ।'' [21] नेताओं के सहयोग को पाकर सर्व प्रथम रमाबाई रानाडे, सरलादेवी चौधरानी, सरोजिनी नायडू, आदि ने राजनैतिक अधिकारों की माँग की । 1917 में लाई माटेंगु के पास मिसिज नायडू के नेतृत्व में स्त्रियों के लिए वोटाधिकार और समानाधिकार की माँग की गई । लीग तथा काँग्रेस ने इस में पूर्ण सहयोग दिया । परिणाम स्वरुप भारत के विभिन्न प्रांतो में स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया । श्रीमती मार्गरिट लिखती है ''नारी-आंदोलन की बिखरी हुई शक्तियों का समीकरण करने का प्रयत्न पूना की प्रथम अखिल भारतीय स्त्री-सभा (1927) में किया गया । तब से वह सभा निरंतर नारी के अधिकारों के निर्णय में प्रयत्नशील रही है ।''

नारी-आंदोलनों का प्रभाव आधुनिक काव्य पर भी हुआ । एक स्वर उन कवियों का था, जो नारी को प्रसन्न और उत्थित तो देखना चाहते है पर स्वतंत्रता और समानता को उसका अभिशाप मानते है और दूसरा स्वर इन कवियों का जो नारी को अधिकार युक्त और मुक्त देखना चाहते है - पंतजी लिखते है -

'' योनि नहीं है रे यह भी है मानवी प्रतिष्ठि,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।
द्वंद्व क्षुधित मानव-समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर - नारि के सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित । '' (22)

(7) इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव :-

सन् 1885 में इंडियन कांग्रेस की स्थापना हुई थी । भारतीय स्त्रियों की गिरी हुई दशा को सुधारना राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें अग्रसर करना, उनके समान अधिकारों के लिए आवाज़ उठाना आदि कांग्रेस का प्रमुख ध्येय रहा । उन्होंने अनुभव किया कि स्त्री और पुरुष की सामूहिक उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति संभव है । लाला लजपतराय ने कहा था ''स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है । क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है । चाहे भूतकाल हो भविष्य , पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है । इसलिए पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दायत्व से पूर्णत : मुक्त होने दो, उन्हें अपने बराबर समझो । ''गांधीजी विशेष रुप से इस ओर आकर्षित हुए थे । उन्होंने घोषणा की ''स्त्री-पुरुष की सहगामिनी है । वह बुद्धि में पुरुष से तुच्छ नहीं है । उसे पुरुष के छोटे-छोटे कामों में भाग लेने का अधिकार है । उसे पुरुष की भांति स्वाधीनता और स्वतंत्रता पाने का अधिकार है । परिणाम स्वरुप नारी ने राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया । सवज्ञा आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया । 1930 के आंदोलन की नारी की परिस्थितियों के संबंध में श्रीमती कृष्णा हठीसिंह ने लिखा है ''यद्यपि अभी तक भारतीय राजनीति में स्त्रियों ने सक्रिय भाग नहीं लिया था, किन्तु अब एक आकस्मिक जागृति उनमें फैल गई । घरों की छाया को त्याग कर वे बिल्कुल आगे आ गई और उन्होंने सहज रीति से आंदोलन को अपना लिया, मानों वह कोई विचित्रता ही न थी । उस समय आंदोलन, समस्त नेताओं के बन्दीगृह में होने के कारण ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा था, किन्तु स्त्रियों ने आकर उसे सँभाल लिया । प्रतिदिन, नित्य प्रति बढ़नेवाली संख्याओं में स्त्रियाँ कांग्रेस की मेम्बर बन रही थीं । उन्होंने न केवल ब्रिटिश सरकार को , जो इस प्रकार के अप्रत्याशित साहस के लिए तैयार न थी, आश्चर्य में डाल दिया, वरन् भारतीय पुरुष वर्ग को भी आश्चर्यान्वित कर दिया ।'' (23)

राष्ट्रीय आंदोलन में नारी के भाग लेने का प्रभाव आधुनिक काव्य पर पड़े बिना रह नहीं सकता । कवि ने नारी को 'सबला' के रुप में देखा और राष्ट्र के उद्धार हेतु उसे पुकारा ।

''रागिनी सी कामिनी तुम क्रांति के नव स्वर निकालो,
छोड़ कर जादूगरी संघर्ष के वे दिन सँभालो ।'' (24)

इस प्रकार देखते है कि लगभग एक ही दिशा में बहनेवाली युग की विविध प्रेरणाओं ने हिन्दी-काव्य की नारी-भावना को नए साँचे में ढाला है । उनका द्रष्टिकोण उदार और व्यापक हुआ है । आधुनिक कवियों ने नारी को न केवल अपनी करुणा एवं सहानुभूति ही अर्पित की, अपितु उनके व्यक्तित्व में निहित् सौन्दर्य, प्रेम, स्वाभिमान, क्षत्रियत्व, आत्मोसर्ग तथा राष्ट्र-भावना को भी विभिन्न कोणों से उजागर किया । नारी का परंपरित एवं पत्नी रुप का तो स्तवन हुआ ही, उसे शक्ति तथा विद्रोह की तेजस्विनी प्रतिमूर्ति के रुप में भी देखा गया । नारी कवि की द्रष्टि में सचेतन, गतिशील, भावमयी और व्यक्तित्व धारिणी होकर आई ।

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक युग में व्यक्ति की सत्ता पुनः प्रतिष्ठित हुई है । फलतः नारी अब पुरुष के पौरुष - प्रदर्शन का निकष या उसकी तरल भाषाभिव्यक्ति का माध्यम मात्र न रहकर अपने व्यक्तित्व की निजता के साथ सामने आई है । मध्ययुगीन बोध 'वीर भोग्या वसुंधरा' को द्रष्टि में रखकर चलता है । जहाँ भक्तियुग के निवृत्तिमूलक जीवनदर्शन के कारण नारी तिरस्कृत हुई । वहाँ रीति-युग में प्रवृत्तिमूलक जीवन-दर्शन के कारण भी उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व अपमानित हुआ । मध्ययुग की नारी पुरुष के विलास का उपकरण -मात्र रही । अधिक से अधिक वह जीवन से पराजित उसके जर्जर व्यक्तित्व को आश्रय प्रदान कर सकती थी । किन्तु, देह के अतिरिक्त भी नारी का एक और अस्तित्व हो सकता है । जीवन और जगत् के विविध व्यापार उसकी मानसिकता और प्रतिभा के आलोक में जगमगा सकते है । जटिल परिस्थितियों के अरण्य में भी वह अपनी बैद्धिक शक्ति की कुदाली से मार्ग बना सकती है । उसमें भी निर्णय लेने की शक्ति है । वह मध्ययुगीन कवि की द्रष्टि में अछूता ही रह गया है । नारी को साधना-मार्ग की बाधा मानने की प्रवृत्ति मध्ययुग में इतनी अधिक बढ़ी कि उनके प्रति अवज्ञा और तिरस्कार एक युग सत्य प्रतीत होता है । ''उस विवशता भरी वेदना की तनिक कल्पना कीजिए जो उन पत्नियों के हृदयों को दग्ध करती होगी, जिनके पतिजीवन के सर्वोच्च ध्येय की खोज में उनका त्याग कर रहे थे । वे अपने पतियों की निन्दा नहीं करती थीं , क्योंकि, पति तो बहुत बड़े उद्देश्य के लिए सन्यास ले रहे थे । दूसरी ओर, वे पतियों के साथ सन्यासिनी भी नहीं हो सकती थीं क्योंकि वह सन्यास नहीं होता, जिसमें माया भी सन्यासी के साथ चल सकती है ।'' (25)

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

(1) मेयर : सेक्सुअल लाइफ इन इेनसिंयट इन्डिया, प्रथम पोथी, पृ.6
"Poetry can do without the husbandman and the burgher but take away woman and you cut its very life away."
(2) भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : पृ.297
(3) आधुनिक हिन्दी-काव्य में नारी-भावना : शैलकुमारी, भूमिका, पृ.1
(4) वही, पृ.2 से उद्धत (पोजीशन आव विमेन इन हिन्दू सिविलाईझेशन)
(5) पुष्पकरिणी में संकलित खड़ीबोली की कविता : सच्चिदानंद वात्स्यायन, शीर्षक लेखक, पृ.7
(6) आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना : शैलकुमारी, पृ.8 से उद्धत (वृहदाख्यक उपनिषद, 4,3,21)
(7) चिन्तामणि, पहला भाग, 1963 का संस्करण, पृ.164
(8) वही
(9) हिन्दी साहित्य : डा.हजारीप्रसा द्विवेदी, पृ.300
(10) पाक्कथन : गोपाल शरणसिंह मानवी, पृ.2
(11) हिन्दी साहित्य : डा.हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.382
(12) Bernard Shaw : "The world cannot settle down to any decent form of stability, unless equal rights are distributed among men and woman by fifty-fifty.
(13) मैथिलीशरणगुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा.कमलाकान्त पाठ़क, पृ.144
(14) पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त, पृ.32
(15) वकसंहार : मैथिलीशरण गुप्त, पृ.4
(16) पल्लव, आँसू : सुमित्रानंदन पन्त, पृ.65
(17) युगवाणी, नारी : सुमित्रानंदन पन्त, पृ.58
(18) यशोघरा : मैथिलीशरण गुप्त, पृ.161
(19) सैरन्ध्री : मैथिलीशरण गुप्त, पृ.27
(20) जीवन मेरी द्रष्टि में, वीणा, दिसम्बर, 1942 : रामकुमार वर्मा
(21) ग्राम्या-नारी : सुमित्रानंदन पन्त, पृ.85
(22) वही
(23) विमन इन इंडियन पोलिटिक्स : श्रीमती कृष्णा हठीसिंह
(24) लालचूनर - नारी : अंचल, पृ.38-39
(25) पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त : रामघारीसिंह दिनकर, पृ.19.